तीव्र क्लेशों से भरे बहुत जन्मान्तरों के बाद ही निर्विशेष ब्रह्मज्योति में लीन हो पाते हैं। यह भी पूर्ण मुक्ति नहीं है, क्योंकि संसार में पुनरागमन का भय वहाँ भी बना रहता है। परन्तु भक्त श्रीभगवान् के श्रीविग्रह और लीलामृत के दिव्य स्वरूप को जानकर देह का अन्त होने पर सुगमता से भगवद्धाम को प्राप्त हो जाते हैं, जिससे संसार में पुनरागमन का भय सदा-सदा के लिए निवृत्त हो जाता है। 'ब्रह्मसंहिता' में उल्लेख है कि श्रीभगवान् के असंख्य अवतार और रूप हैं— **अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्** । यद्यपि उनके अनेक दिव्य रूप हैं, तथापि श्रीभगवान् अद्वय हैं। यह सत्य, जो लौकिक विद्वानों और प्रायोगिक दर्शनवेत्ता के लिए सर्वथा अगम्य है, निष्ठापूर्वक हृदयंगम करना होगा। यथा वेदवाणी :

एको देवो नित्यलीलानुरक्तो भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मा।

अद्वयदेव श्रीभगवान् नाना दिव्य रूपों में अपने अनन्य भक्तों के साथ लीला करने में नित्य अनुरक्त रहते हैं।' इस वेदवचन को स्वयं श्रीभगवान् ने गीता के इस श्लोक में प्रमाणित किया है। जो पुरुष वेद एवं श्रीभगवान् के प्रमाण के आधार पर इस सत्य को अंगीकार करके दार्शनिक मनोधर्मी करने में समय नष्ट नहीं करता, वह मुक्ति की परमोच्च अवस्था प्राप्त करता है। इस सत्य को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने मात्र से निस्सन्देह मुक्ति हो जायगी। वैदिक वाक्य 'तत्त्वमसि' का यथार्थ तात्पर्य इसी सन्दर्भ से है। जो श्रीकृष्ण को परमब्रह्म जानता है अथवा उनके प्रति यह निवेदन करता है कि 'भगवन्! आप परब्रह्म स्वयं भगवान् हैं', वह अवश्य तत्क्षण मुक्त हो जाता है। इसीलिए यह भी निश्चित है कि उसे श्रीभगवान् के चिन्मय सान्निध्य की प्राप्ति होगी। इसमें सन्देह नहीं कि इस कोटि के श्रद्धालु भगवद्भक्त का जीवन कृतार्थ एवं चरितार्थ हो जाता है। वेदवचन इसका प्रमाण है:

तमेव विदित्वातिमृत्युमुपैति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।

श्रीभगवान् को जानने से जन्म-मृत्यु से पूर्ण मुक्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त, मुक्ति का कोई अन्य मार्ग नहीं है, क्योंकि जो श्रीकृष्ण को तत्त्व से नहीं जानता, वह अवश्यमेव तमोगुण में स्थित है। अतएव मधुपात्र के बाहरी चाटुकारी करने के समान लौकिक विद्या के आधार पर भगवद्गीता की मनमानी व्याख्या करने से मुक्ति नहीं हो सकेगी। यह सम्भव है कि इस श्रेणी के प्रयोगाश्रयी दार्शनिकों को जगत् में अत्युच्च पदों की प्राप्ति हो जाय, पर यह आवश्यक नहीं कि उन्हें मोक्षलाभ भी हो। मिथ्या अहंकार से दृप्त हुए इन लौकिक विद्वानों को कृतार्थ होने के लिए भगवद्भक्त की अहैतुकी निरवधि कृपा की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अतः मनुष्यमात्र को चाहिए कि विवेक और ज्ञान सहित कृष्णभावना का अनुशीलन कर जीवन की कृतार्थता को प्राप्त करे।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।१०।।

वीत=मुक्त हुए; **राग**=आसक्ति; **भय**=भय; **क्रोधाः**=क्रोध से; **मन्मया**=पूर्ण